International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
Volume 1 Issue 1 July – September 2024
Website: https://ijarmt.com

भारतीय जाति व्यवस्था और स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा

अजय कुमार
सहायक प्रोफ़ेसर, गुरुनानक खालसा कॉलेज, करनाल।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था का आधार काफी हद तक यहाँ की जाति व्यवस्था को माना जाता है। हालांकि भारत में जाति व्यवस्थ आने से पहले सामाजिक व्यवस्था आ चुकी थी और भारत एक सभ्य समाज के रूप में स्थापित हो चुका था जिसकी राजनीतिक व्यवस्था भी काफी विकसित थी। प्राचीन वैदिक साहित्य में भारतीय सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख मिलता है लेकिन प्राचीन वैदिक समाज में जाति व्यवस्था दिखाई नहीं देती। अगर वेदों के साथ–साथ दूसरे प्राचीन साहित्य की बात की जाए तो उसमें भी जाति व्यवस्था का बहुत अधिक प्रभाव दिखाई नहीं देता। कुछेक प्राचीन ग्रंथों को छोड़ दिया जाए तो ज्यादातर प्राचीन ग्रंथ किसी भी रूप में जाति व्यवस्था का समर्थन करते नजर नहीं आते लेकिन वर्ग व्यवस्था जरूर दिखाई देती है। इस प्राचीन भारतीय समाज की वर्गीय व्यवस्था की एक विशेषता रही कि किसी भी व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार वर्ग बदलने का अधिकार था। प्राचीन भारतीय वैदिक समाज, रामायणकालीन समाज और महाभारतकालीन समाज में ऐसा देखा जाता है कि कोई भी व्यक्ति अपना वर्ग बदल सकता था। ऐसे कितने ही उदाहरण मिलते हैं जहाँ शूद्र वर्ग में जन्म लेने के बावजूद ब्राह्मण वर्ग में परिवर्तन करके बहुत से विद्वानों ने अपने को ब्राह्मण के रूप में स्थापित किया। उस समय सभी को शिक्षा का अधिकार था और कोई भी व्यक्ति उच्चतम शिक्षा प्राप्त करके उच्चतर सामाजिक स्थिति प्राप्त कर सकता था। कई महान महर्षि निम्न सामाजिक स्तर से ऊपर उठकर समाज के उच्चतम स्तर तक पहुँचे। रामायण और महाभारत काल में भी ये देखा गया कि वर्ग परिवर्तन हो सकता था। जैसे कि एक व्यापारी वर्ग अपनी सैन्य क्षमता के आधार पर क्षत्रिय वर्ग में जा सकता था। महाभारत में श्री कृष्ण, करण, विधुर आदि के बारे में कहा जाता है कि निचले स्तर से ऊपर उठकर ये महानता तक पहुँचे और समाज में एक सकारात्मक सामाजिक एकता का संदेश दिया। सिर्फ इतना ही नहीं महाभारत के बाद का जो ऐतिहासिक सफर भारत का रहा है उनमें भी हमें कई स्थानों पर ऐसी जानकारी मिलती है जहाँ अपना वर्ग और स्थान बदलकर उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त की गई। बहुत से इतिहासकारों के द्वारा नन्दवंश के बारे में इसी प्रकार के विचार प्रकट किए गए। मौर्यवंश के संदर्भ में भी इसी ढंग की बात कही जाती है। आज भी मौर्य वंश से सम्बन्ध जोड़ने वाली जातियाँ समाज के मध्य या निचले पायदान पर गिनी जाती हैं। इसी प्रकार गुप्त वंश से वैश्य जाति को जोड़ा जाता है और वैश्य वर्ग को भी समाज के तीसरे स्तर पर ही रखा गया है। उपरोक्त राष्ट्रीय सत्ता से जुड़े वंशों से अलग भी ये देखा गया है कि एक जाति एक स्थान पर उच्च स्तर पर दूसरे स्थान पर निम्न स्तर पर रही। पिछले सैंकड़ों वर्षों में ऐसा देखा गया है कि विभिन्न जातियों ने कहीं एक स्थान पर अगर राजसत्ता अपने हाथ में ले ली तो उस क्षेत्र विशेष में उनका उच्च स्तर बन गया लेकिन उसी जाति का किसी दूसरे स्थान पर निम्न स्तर बना रहा। स्वामी विवेकानन्द का विचार भारतीय जाति–व्यवस्था के बारे में तथ्यपरक रहा है। स्वामी विवेकानन्द का मानना रहा है कि भारतीय समाज में वर्ग रहे हैं और वर्गों का अपना महत्व भी रहा है। इसलिए हम इन वर्गों की समाप्ति की उम्मीद नहीं कर सकते लेकिन इसकी उपयोगिता को बनाए रखने के साथ–साथ व्यक्ति को वर्ग परिवर्तन का अवसर प्रदान कर सकते हैं। उनका मानना था कि कोई भी वर्ग व्यक्ति की योग्यता अनुसार ही तय होता है और अपनी क्षमताओं से कोई भी व्यक्ति अपने से उच्चतर स्थिति प्राप्त कर सकता है हालांकि वह किसी भी वर्ग का महत्व कम या ज्यादा नहीं मानते थे लेकिन फिर भी तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कहा कि "निम्न वर्ग को ऊपर तक उठने का अवसर मिलना चाहिए। एक चाण्डाल को शिक्षा की जरूरत एक ब्राह्मण से

भी ज्यादा है। अगर आप एक ब्राह्मण को शिक्षित करने के लिए एक अध्यापक लगाते हो तो एक चाण्डाल के लिए दस अध्यापक लगा दो लेकिन उसे शिक्षित जरूर करो" (अवस्थी, 94)। उन्होंने प्रत्येक वर्ग की समान प्रासंगिकता में विश्वास किया। उन्होंने कहा कि जाति व्यवस्था वास्तव में वर्ग से आई है लेकिन इसमें पारस्परिक वैमनस्य या भेद नहीं होना चाहिए बल्कि सभी को एक दूसरे का पूरक बनना चाहिए। सभी से मिलकर ही ये भारतीय समाज है और जिसे आगे बढ़कर पूरी मानव जाति की सेवा करनी है। इसलिए चाहिए कि हम अपने भेदभाव को छोड़कर समान मानव गरिमा और समान देव तत्व को मानते हुए आगे बढ़ें। वह किसी भी प्रकार के वर्ग संघर्ष में नहीं बल्कि वर्ग सहयोग में विश्वास करते थे और इन वर्गों या जातियों के उन्मूलन की उन्होंने सिफारिश नहीं की बल्कि उनका तो मानना था कि कोई भी ऐतिहासिक, राजनीतिक या सामाजिक संस्था अपना एक लम्बा अनुभव इतिहास और औचित्य रखती है इसलिए हमें उसकी प्रासंगिकता को समझना चाहिए। उनका मानना था कि एक शूद्र का कार्य भी उतना ही पवित्र है जितना कि एक ब्राह्मण का लेकिन शूद्र के कार्य के फल को उच्च वर्ग ने डकार लिया और उसकी स्थिति को निम्न बना दिया ये बिल्कुल गलत है। उन्होंने कहा कि, "शूद्रों में कर्म करने की क्षमता है। वे परिश्रम करते हैं लेकिन उनको श्रम का फल अधिकांश दूसरे लोग ही छीन लेते हैं अब वो इस तथ्य से परिचित हो चले हैं। अतः उच्च वर्ग का हित इसी में है कि निम्न वर्गों को उनके सभी अधिकार प्राप्त करने में उनकी मदद करें" (अवस्थी, 93)। उनका स्पष्ट मानना था कि शूद्रों के अन्दर भी समान ईश्वरीय तत्व है लेकिन उनकी योग्यता को दबाया गया है। अगर उन्हें फिर से आगे बढ़ने के अवसर दिए जाएं तो वो भी उच्चतम स्थिति प्राप्त कर सकते हैं वैसे भी इंसान धरती पर उच्चतम से उच्चतम स्थिति प्राप्त करने के लिए ही आता है फिर उसे ऐसा क्यूँ ना करने दिया जाए। उन्होंने ब्राह्मण वर्ग को इसके लिए दोष देते हुए कहा कि ब्राह्मणों ने तथाकथित निम्न समुदाय को मूलभूत अधिकारी से उन्हें वंचित किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्दू धर्म' में कहा कि "ब्राह्मण आप वृथा अभिमान न करें। आप में भी अब ब्राह्मणत्व शेष नहीं रह गया क्यूँकि आप भी इतने दिनों से मलेच्छ राज्य में रह रहे हो। आप भी प्राचीन कुमारिल भट्ट की तरह ..... तुषाग्नि में प्रवेश कीजिए और अगर ऐसा न कर सको तो अपनी दुर्बलता स्वीकार करो और सर्वसाधारण को उनके प्रकृत अधिकार दे दो" (हिन्दू धर्म, 13)। वो कहते हैं कि अगर कोई भी व्यक्ति अपनी मूल क्षमताओं को विकसित कर लेता है तो वो नर से नारायण हो सकता है क्योंकि कोई भी व्यक्ति जब समान दैवीय शक्तियों से परिपूर्ण है तो फिर कोई उच्च या निम्न कैसे हो सकता है? ये उच्चता या जाति की उच्चता की स्थिति तो हम अपने कर्मों से प्राप्त करते हैं। स्वामी विवेकानन्द अपनी पुस्तक 'हिन्दू धर्म' में स्पष्ट करते हैं कि वेदों के रचयिता को किसी ने नहीं देखा अर्थात् महान वेदों को वास्तव में जिसने लिखा हम उसकी उच्चतर या निम्नतर सामाजिक स्थिति को नहीं जानते लेकिन जैसा कि वात्स्यायन ने कहा कि जिसने यथास्थिति धर्म की अनुभूति की है वह मलेच्छ होने पर भी ऋषि हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द आगे कहते हैं कि प्राचीन काल में वेश्यापुत्र वशिष्ठ, धीवरतनय व्यास, दासीपुत्र नारद प्रभृति ऋषि कहलाते थे। 'सच्ची' बात तो यह है कि धर्म का साक्षात्कार होने पर किसी प्रकार का भेद नहीं रह जाता है।" (हिन्दू धर्म, 110)। लेकिन धर्म का साक्षात्कार करने के लिए जरूरी है कि हम सभी को शिक्षा प्राप्ति का समान अधिकार देने के साथ–साथ वो परिस्थितियाँ भी प्रदान करें जिससे वो शिक्षा प्राप्त कर सकता है। उन्होंने कहा कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए उसे स्वतंत्रता दी जाए। उन्होंने कहा कि, "शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक स्वतंत्रता की ओर आगे बढ़ने में बाधा डालने वाली समस्याएँ हानिकारक हैं और उन्हें शीघ्र नष्ट करने के लिए प्रयास करना चाहिए।" (अवस्थी, 89)। उन्होंने कहा कि हमें वेदांत दर्शन की सहायता लेनी चाहिए। भारतीय ज्ञान हरेक समस्या के समाधान का रास्ता निकाल सकता है, अगर उसका ठीक प्रकार से अध्ययन किया जाए उनका मानना था कि, "अस्पृश्यता और जातिवाद को सुलझाने के लिए वेदांत दर्शन के आधार पर आध्यात्मिक सत्यों का प्रचार किया जाए, सभी नर नारियों को संस्कृत भाषा पढ़ाई

जाए व शिक्षा का जन–जन तक प्रचार किया जाए।" (शर्मा, 16)। अगर प्रत्येक व्यक्ति तक ज्ञान पहुँचेगा तो वो स्वयं सच्चाई को समझा सकता है और इसके लिए भाषा जो ज्ञान की पुस्तकों को पढ़ने समझने का मौका देती है बहुत जरूरी है। इसलिए उन्होंने संस्कृत को जन साधारण की भाषा बनाने का समर्थन किया क्योंकि संस्कृत के माध्यम से जब संस्कृत भाषा में लिखे भारतीय वैदिक साहित्य को पढ़ा जाएगा तो ये समझ में आ जाएगा कि प्राचीन भारतीय समाज में छूआछुत नहीं थी और न ही किसी को विशेष अधिकार थे बल्कि कोई भी उच्च स्थिति प्राप्त कर सकता था। लेकिन बाद के कुछ ग्रंथों ने जाति व्यवस्था को एक बुराई के रूप में मजबूत किया। जरूरत है इस बुराई को खत्म करने की, असमानता को खत्म करने की, विशेष अधिकार युक्त वर्ग ना हो इस बात की। उन्होंने कहा कि जाति व्यवस्था के उन्मूलन से ज्यादा जरूरी है कि अधिकारों का भेदकारी वर्गीकरण न हो। जब किसी को अति ज्यादा अधिकार दिए गए और किसी को अधिकार शून्य कर दिए गए तब अस्पृश्यता पैदा हुई इसलिए अधिकारों का असमान वितरण समाप्त होना चाहिए। जाति व्यवस्था मनुष्यों को स्वयं के समूहों में बाँधने का मौका देती है जिनसे बचना मुश्किल है क्योंकि आप जहाँ भी जाएँगे ये जाति व्यवस्था मिलेगी लेकिन विशेषाधिकार नहीं होने चाहिएं।" (शर्मा, 16)। उनका मानना था कि जब प्रत्येक व्यक्ति और उसका कार्य समान महत्त्व रख सकता है तो फिर किसी को विशेषाधिकार क्यों दिया जाए? प्रत्येक व्यक्ति को समान महत्त्व और समान अधिकार अगर दिए जाएंगे तो भारत की सच्ची शक्ति को देखा जा सकता है। भारत के प्रत्येक व्यक्ति में और यहाँ तक की पूरी मानव जाति के प्रत्येक व्यक्ति में समान क्षमताएँ हैं जरूरत है उनको अधिकार दिए जाने की। उन्होंने अपनी पुस्तक 'कर्मयोग' में कहा कि "सड़क का भंगी भी उतना ही उच्च है जितना कि एक सिंहासनारूढ़ राजा, थोड़ी देर के लिए एक राजा को गद्दी से उतारकर उसे मेहतर का काम दो और मेहतर को राजा का, फिर देखो वो कैसा कार्य करते हैं" (कर्मयोग, 19)। स्वामी विवेकानन्द ये दिखाना चाहते थे कि हमने समाज में असमानता और ऊँच–नीच के द्वारा अपने भारतीयों के गुणों को ही छुपा दिया है। भारतीय समाज के बड़े वर्ग को शूद्र घोषित करके भारत की योग्यता को कमजोर कर दिया है। प्रत्येक भारतीय इतनी क्षमता रखता है कि वो कोई भी कार्य कर सकता है लेकिन छुआछूत और उच्च–निम्न सामाजिक स्तर बनाकर समाज के बहुजन वर्ग के गुणों को दबा दिया है, जो भारत के लिए खतरनाक साबित हुआ है इसलिए जरूरी है कि अब सभी को समानता और स्वतंत्रता दी जाए। उन्होंने कहा कि, "कोई भी मनुष्य और कोई भी राष्ट्र भौतिक समानता के बिना भौतिक स्वतंत्रता प्राप्त नही ंकर सकता और न ही मानसिक समानता के बिना मानसिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है" (शर्मा, 28)। वो किसी भी तरह से इस असमानता को समाप्त करना चाहते थे। वे तो यहाँ तक कहते थे कि अगर प्रकृति ने भी कोई असमानता पैदा की है तो वो भी समाप्त होनी चाहिए क्योंकि मनुष्य एक श्रेष्ठ प्राणी है और उसकी श्रेष्ठता इसी में है कि वो अपने विवेक का प्रयोग करते हुए पारम्परिक व प्राकृतिक असमानताओं को खत्म करे। उन्होंने कहा कि, "असमानता मानव प्रकृति का पाप है, समस्त मानव जाति पर एक शाप है तथा समस्त दुःखों का मूल है तथा वह भौतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक सभी प्रकार के बंधन का स्त्रोत है" (शर्मा, 23)। इसलिए जरूरी है कि इन असमानताओं को समाप्त कर अधिक से अधिक समानता प्राप्त की जाए क्योंकि जितनी अधिक समानता होगी, उतना ही अधिक पारस्परिक सम्मान बढ़ेगा और इससे भ्रातृत्व मजबूत होगा जो राष्ट्रीय एकता के लिए जरूरी है। उन्होंने कहा कि, "प्रजाति, धर्म, भाषा, सरकार ये सभी मिलकर राष्ट्र बनाते हैं" (शर्मा, 25)। स्वामी विवेकानन्द का पूर्ण विश्वास था कि कोई भी राष्ट्र अगर विभिन्न वर्गों में वैमनस्य पूर्ण बँटा होगा तो वो राष्ट्र कभी भी उन्नति नही ंकर सकता इसलिए उन्होंने विचार व्यक्त किया कि वर्गों का अस्तित्व बना रहे लेकिन किसी प्रकार का मतभेद नहीं होना चाहिए बल्कि उन्हें एक दूसरे का पूरक बनकर चलना चाहिए। भारत में विभिन्न जाति, भाषाई, धामिक आदि समूह है लेकिन सम्पूर्ण भारत को जोड़ने के लिए जरूरी है कि हिमालय से कन्याकुमारी तक सभी भारतीयों को विभिन्न भेदों को मिटाकर एकता के सूत्र में बाँधा जाए। इस उद्देश्य से

उन्होंने पूरे भारत में कई यात्राएँ भी की और देशवासियों को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए जगह–जगह पर लोगों को राष्ट्रीय एकता का पाठ पढ़ाया। इतना ही नहीं वो तो पूरी मानव जाति को एक ही ईश्वर की संतान मानकर सर्वकल्याण की बात करते थे। उन्होंने कभी भी कट्टर राष्ट्रवाद का समर्थन नहीं किया बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद के माध्यम से वैश्विक भलाई का उद्देश्य भी सामने रखा। वे अपने को अन्तर्राष्ट्रीय विचारक के रूप में स्थापित कर रहे थे। उन्होंने विभिन्न देशों की यात्राएँ की और वैश्विक एकता का प्रचार किया। वे भारतीय वैश्विक संस्कृति को पश्चिम के विज्ञान के साथ मिलाकर वैश्विक समाज का खाका तैयार कर रहे थे फिर इस स्थिति में वो भारतीय जातिगत भेदों को कैसे स्वीकार कर सकते थे। उन्होंने कहा कि, "निसन्देह मुझे भारत से प्यार है पर प्रत्येक दिन मेरी दृष्टि अधिक निर्मल होती जाती है। हमारे लिए भारत या इंग्लैंड या अमेरिका क्या है? हम तो उस ईश्वर के सेवक हैं। क्या जड़ में पानी देने वाला सारे वृक्ष को नहीं खींचता है?" (अवस्थी, 92)। उन्होंने भारतीयों को इतिहास से सीखने को कहा कि हमने जब विश्व से अपना सम्बन्ध तोड़ा तब से ही हमारा पतन लगातार होता रहा है क्योंकि हम विश्व की किसी भी नस्ल को या जाति को हीन समझकर या गलत समझकर अपने दरवाजे बंद नहीं करने चाहिए थे बल्कि ज्ञान कहीं से भी सीखने में कोई बुराई नहीं है। उन्होंने कहा कि, "कोई मनुष्य, कोई जाति दूसरों से घृणा करते हुए जी नहीं सकती। भारत के भाग्य का निपटारा तो तभी हो चुका था जब उसने 'मलेच्छ' शब्द को ढूँढ़ निकाला और दूसरों से अपना नाता तोड़ लिया" (अवस्थी, 92)। उन्होंने विभिन्न देशों में देखा कि वहाँ विभिन्न नस्लीय भेद होते हुए भी समय के साथ बहुत बदलाव आ चुका था और वैज्ञानिक तरीकों को अपनाया जा रहा था। सभी को आगे बढ़ने के अवसर प्रदान किए जाने के प्रयास हो रहे थे। पुरुष–महिलाओं की समान शिक्षा पर बल दिया जा रहा था तो उन्होंने भी प्राचीन भारतीय ग्रंथों और आधुनिक पश्चिमी सभ्यताओं के आधार का उदाहरण देकर कहा कि भारत में भी महिलाओं को समान शिक्षा मिलनी चाहिए। किसी भी महिला से उसकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति के आधार पर भेद किए बगैर अधिक से अधिक मूल्यात्मक शिक्षा दी जानी चाहिए। अगर किसी देश की महिलाएँ अर्थात् माताएं शिक्षित होंगी तो वो सामाजिक स्थिति सुधारने में महत्त्वपूर्ण योग्दान देंगी। महिलाओं की खुद की स्थिति भी काफी हद तक खराब हो चुकी थी और जिस भेदभावपूर्ण सामाजिक व्यवस्था ने छुआछूत जैसी बुराई को बढ़ावा दिया उसी व्यवस्था ने महिलाओं को भी हाशिये पर लाकर खड़ा कर दिया था। कहते हैं कि एक दुःखी इंसान दूसरे के दुःख को समझ सकता है। ऐसी स्थिति में अगर महिलाओं को आगे बढ़ने का मौका मिलता है तो वो भारतीय सामाजिक स्थिति को सुधारने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। इसलिए उन्होंने कहा, जो कि उनकी पुस्तक सफलता के सोपान में लिखा है कि, "लड़कियों की शिक्षा जरूरी है, गाँव–गाँव में पाठशाला हो, स्त्री शिक्षा से देश का भविष्य उज्ज्वल होगा" (सफलता के सोपान, 53)। वो भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक थे लेकिन ऐसे किसी विचार को मानने को तैयार नहीं थे जो अवैज्ञानिकता या भेदभाव बढ़ाता है। उनका स्पष्ट मानना था कि भारतीय संस्कृति के वैज्ञानिक और सामाजिक भेदभाव को दूर करने वाले संस्कारों का विकास करना जरूरी है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारत का ऐतिहासिक विकास' में लिखा है कि, "सामाजिक रीति रिवाज़ जो बाधक हैं और स्मृतियों पर आधारित हैं तो स्मृतियों को यथाकाल बदलना ही होगा यही स्वीकृत विधान है" (भारत का ऐतिहासिक क्रम विकास एवं अन्य प्रबंध, 47) उनका विचार था कि हमें भारतीयों धर्मग्रंथों में भी जरूरत पड़ने पर उचित और अनुचित पक्षों को अलग करके उनकी प्रासंगिकता को उसी दृष्टिकोण से अपनाना होगा। अगर कोई भारतीय ग्रंथ मनुष्य में ऊँच–नीच के भेदभाव को बढ़ावा देता है तो उसकी कोई जरूरत नहीं है क्योंकि सभी मनुष्य समान प्रासंगिकता रखते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक ज्ञानयोग में लिखा कि, "नीचे धरती पर रेंगने वाला कीड़ा और स्वर्ग का श्रेष्ठतम देवता इन दोनों के ज्ञान का भेद प्रकारगत नहीं परिमाणगत है" (ज्ञानयोग, 170)। उन्होंने कहा कि सभी मनुष्य अपने समान महत्त्व को अपनी दुर्बलताओं की वजह से गवां देते हैं इसलिए जरूरी है कि सभी को सबल बनाया जाए। उन्होंने अपनी पुस्तक 'कर्मयोग' में

लिखा कि, "भय दुर्बलाताओं की निशानी है जो मनुष्यों को पाप कार्यों में लगाती है" (कर्मयोग, 28)। सदियों से भारत में सामाजिक भेदों के कारण जो दुर्भावनापूर्ण वातावरण पैदा हुआ है उसने विभिन्न वर्गों के बीच में एक भय पैदा किया जिसने भारतीयों को मानसिक कमजोर किया और वो एक डर के वातावरण में कई विवादों से ग्रस्त हो गए तथा विभिन्न दुर्गणों का विकास होने के कारण भारतीय लोगों का चारित्रिक पतन भी बहुत हो चुका है इसलिए जरूरी है कि जो समाज में अपनी उच्च स्थिति खो चुके हैं उन्हें फिर से उच्च स्थिति तक पहुँचाया जाए। उन्होंने विचार रखा कि जो वर्ग या जातियाँ पहले से ही उच्च स्तर पर बैठे हैं उन्हें अपनी स्थिति अच्छी बनाकर रखनी चाहिए तथा सकारात्मक कार्यों से अच्छी सामाजिक स्थिति बनाने में योगदान देना चाहिए लेकिन जो निचले स्तर पर आ चुके हैं उन्हें आगे बढ़ाना है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारत का भविष्य' में लिखा कि, "उच्च वर्गों को नीचे नहीं उतारना बल्कि नीची जातियों को बराबर उठाना है" (भारत का भविष्य, 13)। इस प्रकार वे किसी भी स्थिति में नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं अपना रहे थे बल्कि उच्च जातियों व निम्न जातियों के बीच समानता पैदा करने का प्रयास कर रहे थे ताकि भारत में एक समान संस्कृति को पुनः विकसित किया जा सके। हम वैदिक युग की बराबरी की संस्कृति भी फिर से प्राप्त कर सकें। उनका विश्वास था कि समानता के द्वारा न सिर्फ नीची जातियों को ऊँचा उठाया जाएगा बल्कि ये उच्च जातियों के भी हित में होगा क्योंकि समानता के द्वारा पारम्परिक वैमनस्य को भी समाप्त किया जा सकेगा। पूरे समाज में प्रेम फैलाए बगैर कोई भी सामाजिक लाभों को प्राप्त नही ंकर सकते। वे तो मानते थे कि सम्पूर्ण समाज एक शरीर की भाँति है जिसका सम्पूर्ण समान विकास जरूरी है। हम इसे अलग–अलग हिस्सों में बाँटकर विकास नहीं बल्कि विकार पैदा कर लेते हैं। सम्पूर्ण शरीर के अलग–अलग अंगों की अलग–अलग जरूरत है लेकिन किसी अंग की जरूरत किसी दूसरे अंग से कम नहीं है और किसी भी अंग को शरीर से अलग करके एक सम्पूर्ण स्वरूप शरीर नहीं बना सकते। पैरों को अलग करके धड़ या गर्दन चल नहीं सकती और गर्दन को अलग करके धड़ का कोई मोल नहीं है। शरीर में रक्त का एक समान रूप से संचार होता है ठीक उसी प्रकार से सारे समाज का संयुक्त रूप में ही महत्त्व है। स्वामी विवेकानन्द ने अपनी पुस्तक 'भक्तियोग' में लिखा कि, "समष्टि से प्रेम किए बिना हम व्यष्टि से प्रेम कैसे कर सकते हैं, समष्टि वह इकाई है जिसमें लाखों छोटी–छोटी इकाईयों का मेल है और समष्टि ही ईश्वर है" (भक्तियोग, 68)। उनका मानना था कि जब सम्पूर्ण समाज ईश्वर का ही रूप है और वो समाज विभिन्न मनुष्यों से मिलकर ही बना है तो हम किसी भी मनुष्य का मूल्य किसी से कम नहीं आंक सकते। इसलिए हर किसी का समान महत्त्व और गौरवमयी जीवन का अधिकार कोई भी नहीं छीन सकता। कोई वर्ग किसी दूसरे वर्ग को या कोई जाति किसी दूसरी जाति को गुलाम बनाकर नहीं रख सकती। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे का दास नहीं है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'ज्ञान योग' में लिखा कि, "इस विश्व–ब्रह्माण्ड में तुम किसी के भी प्रति ऋणी नहीं हो। तुम्हें अपने जन्म सिद्ध अधिकार का ही दावा करना है" (ज्ञान योग, 171)। प्रत्येक व्यक्ति सभी प्रकार के अधिकार समान रूप से रखता है। ईश्वर का सभी में समान अंश है। कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थिति तक पहुँच सकता है और इसके लिए जिस ज्ञान की जरूरत है सभी को चाहिए कि वो प्राप्त करे। किसी के लिए भी ईश्वर ने कोई रुकावट नहीं बनाई। रुकावट पैदा की गई है कुछ स्वार्थी या अर्धज्ञानी लोगों के द्वारा। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्दू धर्म' में लिखा कि, "वेदों का ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार सभी को है। वेदों में कहीं नहीं लिखा कि वेदों को पढ़ने का कोई जाति विशेष ही अधिकार रखती है" (हिन्दू धर्म, 110)। स्वामी विवेकानन्द तो सिर्फ जाति के संदर्भ में हीं नहीं बल्कि धर्मों के सम्बन्ध में भी सभी धर्मों का ज्ञान सभी के लिए उचित मानते थे। उनका मानना था कि अगर एक व्यक्ति सभी धर्मों को ठीक ढंग से समझ लेगा तो धार्मिक झगड़े भी समाप्त हो जाएंगे। 'सूक्तियाँ एवं सुभाषित' नामक पुस्तक में लिखा है कि, "एक सच्चा ईसाई सच्चा हिन्दू होता है और एक सच्चा हिन्दू सच्चा ईसाई होता है" (सूक्तियाँ एवं सुभाषित, 16)। उनका मानना था कि विभिन्न धर्मों में कुछ लोगों ने धर्म पर

अपना नियंत्रण स्थापित कर आमजन को उपक्षित किया है। अगर आमजन को समान रूप से धार्मिक कार्यों में शामिल किया जाए तो न सिर्फ सर्वसाधारण को सामाजिक अधिकार मिलेंगे बल्कि धर्म को भी समझने का अवसर मिलेगा। स्वामी विवेकानन्द सर्वसाधारण को समान अधिकार देने के लिए इतने आतुर थे कि वे किसी भी समाज में थोड़े से लोगों के विशेष अधिकारों और उन्हें विशेष महत्त्व दिए जाने के सख्त विरोधी थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'मेरी समर नीति' में लिखा कि, "कुछ थोड़े से लोग किसी बात को उचित समझते हैं और बस उसे अन्य सभी लोगों पर जबरदस्ती लाना चाहते हैं। इन थोड़े से लोगों के अत्याचार के समान दुनिया में कोई अत्याचार नहीं है" (मेरी समर नीति, 26)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द ने अपनी विभिन्न पुस्तकों तथा विभिन्न सभाओं में अपने विचार व्यक्त करते हुए जाति व्यवस्था पर विश्लेषणात्मक बातें की और जाति को वर्ग के रूप में स्वीकार करते हुए जातिवाद, छुआछूत या किसी भी प्रकार के भेदभाव का सख्त विरोध किया। सभी व्यक्तियों में समान देवी तत्व को पहचाना और सभी को समान अधिकारों और समान सम्मान का समर्थन किया।

संदर्भ –

1. स्वामी विवेकानन्द (अनुवादक ब्रह्मेन्द्र शर्मा व अमल सरकार) (तेइसवां पुर्नमुद्रण, 2022), ज्ञानयोग, रामकृष्ण मठ, नागपुर।
2. स्वामी विवेकानन्द (सप्तम पुर्नमुद्रण, 2018), भारत का ऐतिहासिक क्रम विकास एवं अन्य प्रबंध, रामकृष्ण मठ, नागपुर।
3. सुखबीर सिंह (1997), हिस्ट्री ऑफ पॉलीटिकल थाट : भाग–2 बेयम टू प्रेजेंट डे, रस्तोगी पब्लिशर्स, मेरठ।
4. स्वामी विवेकानन्द (छत्तीसवाँ पुर्नमुद्रण, 2022), कर्मयोग, रामकृष्ण मठ, नागपुर।
5. स्वामी विवेकानन्द (अनुवादन डॉ. विधाभास्कर शुक्ल) (सत्ताइसवाँ पुर्नमुद्रण, 2022), भक्तियोग, रामकृष्ण मठ, नागपुर।
6. स्वामी विवेकानन्द (अनुवादक सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) भारत का भविष्य, (बारहवाँ पुर्नमुद्रण, 2018), रामकृष्ण मठ, नागपुर।
7. स्वामी विवेकानन्द (अट्ठाइसवाँ पुर्नमुद्रण, 2023) हिन्दू धर्म, रामकृष्ण मठ, नागपुर।
8. स्वामी विवेकानन्द (उन्नीसवां पुर्नमुद्रण, 2022), सूक्तियाँ एवं सुभाषित, रामकृष्ण मठ, नागपुर।
9. डॉ. अमरेश्वर अवस्थी और डॉ. रामकुमार अवस्थी (1991), आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
10. योगिन्दर कुमार शर्मा (2001), भारतीय राजनीतिक विचारक (भाग–2 आधुनिक स्वातन्त्रयंतर), कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
11. स्वामी विवेकानन्द (अनुवादक–सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला') (1948, 2017) मेरी समर नीति, रामकृष्ण मठ, नागपुर।
12. स्वामी विवेकानन्द (नवम पुर्नमुद्रण, 2023), सफलता के सोपान, रामकृष्ण मठ, नागपुर।